भीष्म साहनी

(सन् 1915-2003)

भीष्म साहनी का जन्म रावलपिंडी (अब पाकिस्तान) में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर में ही हुई। इन्होंने उर्दू और अंग्रेज़ी का अध्ययन स्कूल में किया। गवर्नमेंट कालेज लाहौर से आपने अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. किया, तदुपरांत पंजाब विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की।

देश-विभाजन से पूर्व इन्होंने व्यापार के साथ-साथ मानद (ऑनरेरी) अध्यापन का कार्य किया। विभाजन के बाद पत्रकारिता, इप्टा नाटक मंडली में काम किया, मुंबई में बेरोज़गार भी रहे। फिर अंबाला के एक कॉलेज में तथा खालसा कॉलेज, अमृतसर में अध्यापन से जुड़े। कुछ समय बाद स्थायी रूप से दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन कॉलेज में साहित्य का अध्यापन किया। लगभग सात वर्ष ***विदेशी भाषा प्रकाशन गृह*** *मास्को में अनुवादक के पद पर भी कार्यरत रहे। रूस प्रवास के दौरान रूसी भाषा का अध्ययन और लगभग दो दर्जन रूसी पुस्तकों का अनुवाद उनकी विशेष उपलब्धि रही। लगभग ढाई वर्षों तक* ***नयी कहानियाँ*** *का कुशल संपादन किया। ये प्रगतिशील लेखक संघ तथा अफ्रो-एशियाई लेखक संघ से भी संबद्ध रहे।*

उनकी प्रमुख कृतियों में ***भाग्यरेखा, पहला पाठ, भटकती राख, पटरियाँ, वाङ्चू, शोभायात्रा, निशाचर, पाली, डायन*** *(कहानी-संग्रह),* ***झरोखे, कड़ियाँ, तमस, बसंती, मय्यादास की माड़ी, कुंतो, नीलू नीलिमा नीलोफर*** *(उपन्यास),* ***माधवी, हानूश, कबिरा खड़ा बज़ार में, मुआवज़े*** *(नाटक),* ***गुलेल का खेल*** *(बालोपयोगी कहानियाँ) आदि महत्त्वपूर्ण हैं।*

तमस *उपन्यास के लिए उन्हें* ***साहित्य अकादमी पुरस्कार*** *से सम्मानित किया गया। उनके साहित्यिक अवदान के लिए हिंदी अकादमी, दिल्ली ने उन्हें* ***शलाका सम्मान*** *से सम्मानित किया। उनकी भाषा में उर्दू शब्दों का प्रयोग विषय को आत्मीयता प्रदान करता है। उनकी भाषा-शैली में पंजाबी भाषा की सोंधी महक भी महसूस की जा सकती है। साहनी जी छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करके विषय को प्रभावी एवं रोचक बना देते हैं। संवादों का प्रयोग वर्णन में ताज़गी ला देता है।*

गांधी, नेहरू और यास्सेर अराफ़ात *उनकी आत्मकथा* ***आज के अतीत*** *का एक अंश है जोकि एक संस्मरण है। इसमें लेखक ने किशोरावस्था से प्रौढ़ावस्था तक के अपने अनुभवों को स्मृति के आधार पर शब्दबद्ध किया है। सेवाग्राम में गांधी जी का सान्निध्य, काश्मीर में जवाहरलाल नेहरू का साथ तथा फ़िलिस्तीन में यास्सेर अराफ़ात के साथ व्यतीत किए गए चंद क्षणों को उन्होंने प्रभावशाली शब्द चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत संस्मरण अत्यंत रोचक, सरस एवं पठनीय बन पड़ा है क्योंकि भीष्म साहनी ने अपने रोचक अनुभवों को बीच-बीच में जोड़ दिया है। इस पाठ के माध्यम से रचनाकार के व्यक्तित्व के अतिरिक्त राष्ट्रीयता, देशप्रेम और अंतरराष्ट्रीय मैत्री जैसे मुद्दे भी पाठक के सामने उजागर हो जाते हैं।*

12072CH16

गांधी, नेहरू और यास्सेर अराफ़ात

उन दिनों मेरे भाई बलराज, सेवाग्राम में रहते थे, जहाँ वह 'नयी तालीम' पत्रिका के सह-संपादक के रूप में काम कर रहे थे। यह सन् 1938 के आसपास की बात है, जिस साल कांग्रेस का हरिपुरा अधिवेशन हुआ था। कुछ दिन उनके साथ बिता पाने के लिए मैं उनके पास चला गया था।

रेलगाड़ी वर्धा स्टेशन पर रुकती थी। वहाँ से लगभग पाँच मील दूर सेवाग्राम तक का फ़ासला इक्के या ताँगे में बैठकर तय करना होता था। मैं देर रात सेवाग्राम पहुँचा। एक तो सड़क कच्ची थी, इस पर घुप्प अँधेरा था। उन दिनों सड़क पर कोई रोशनी नहीं हुआ करती थी।

रात देर तक हम बतियाते रहे। भाई ने बताया कि गांधी जी प्रातः सात बजे घूमने निकलते हैं।

"इधर, हमारे क्वार्टर के सामने से ही वह जाएँगे। कोई भी उनके साथ जा सकता है। तुम भी मन आए तो चले जाना," मैं सकुचाया।

"मैं अकेला उनकी पार्टी के साथ कैसे जा मिलूँ? तुम भी साथ चलो।"

"मैं तो रोज़ ही उन्हें देखता हूँ", भाई ने करवट बदलते हुए कहा, फिर बोला, "अच्छा चलूँगा।"

दूसरे दिन मैं तड़के ही उठ बैठा, और कच्ची सड़क पर आँखें गाड़े गांधी जी की राह देखने लगा।

ऐन सात बजे, आश्रम का फाटक लाँघकर गांधी जी अपने साथियों के साथ सड़क पर आ गए थे। उन पर नज़र पड़ते ही मैं पुलक उठा। गांधी जी हू-ब-हू वैसे ही लग रहे थे जैसा उन्हें चित्रों में देखा था, यहाँ तक कि कमर के नीचे से लटकती घड़ी भी परिचित-सी लगी।

बलराज अभी भी बेसुध सो रहे थे। हम रात देर तक बातें करते रहे थे। मैं उतावला हो रहा था। आखिर मुझसे न रहा गया और मैंने झिंझोड़कर उसे जगाया।
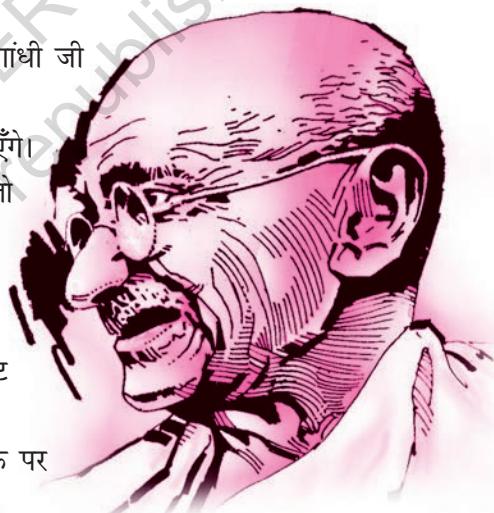
"उठो, यार, गांधी जी तो आगे भी निकल गए।"

"मैंने तो कहा था तुम अपने आप चले जाना," बलराज, आँखें मलते हुए उठ बैठे।

"मैं अकेला कैसे जाता?"

जिस समय हम बाहर निकले, गांधी जी की पार्टी काफ़ी दूर जा चुकी थी।

"चिंता नहीं करो, हम उनसे जा मिलेंगे और वापसी पर तो उनके साथ ही होंगे।"

आखिर, हम कदम बढ़ाते कुछ ही देर में उनसे जा मिले। गांधी जी ने मुड़कर देखा। भाई ने आगे बढ़कर मेरा परिचय कराया–

"मेरा भाई है, कल ही रात पहुँचा है।"

"अच्छा। इसे भी घेर लिया," गांधी जी ने हँसकर कहा।

"नहीं बापू, यह केवल कुछ दिन के लिए मेरे पास आया है।"

गांधी जी ने मुसकुराकर मेरी ओर देखा और सिर हिला दिया।

मैं साथ चलने लगा। गांधी जी के साथ चलनेवाले लोगों में से मैंने दो-एक को पहचान लिया। डॉ. सुशीला नय्यर थीं और गांधी जी के निजी सचिव महादेव देसाई थे। मैं कभी आसपास देखता, कभी नज़र नीची किए ज़मीन की ओर, गांधी जी की धूलभरी चप्पलों की ओर देखने लगता। मैं गांधी जी से बात करना चाहता था पर समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्या कहूँ। फिर सहसा ही मुझे सूझ गया।

"आप बहुत साल पहले हमारे शहर रावलपिंडी में आए थे," मैंने कहा।

गांधी जी रुक गए, उन्होंने मेरी ओर देखा, उनकी आँखों में चमक-सी आई और मुसकुराकर बोले–

"याद है। मैं कोहाट से रावलपिंडी गया था... मिस्टर जॉन कैसे हैं?"

मैंने जॉन साहब का नाम सुन रखा था। वे हमारे शहर के जाने-माने बैरिस्टर थे, मुस्लिम सज्जन थे। संभवतः गांधी जी उनके यहाँ ठहरे होंगे।

फिर सहसा ही गांधी जी के मुँह से निकला–

"अरे, मैं उन दिनों कितना काम कर लेता था। कभी थकता ही नहीं था।..." हमसे थोड़ा ही पीछे, महादेव देसाई, मोटा सा लट्ठ उठाए चले आ रहे थे। कोहाट और रावलपिंडी का नाम सुनते ही आगे बढ़ आए और उस दौरे से जुड़ी अपनी यादें सुनाने लगे। और एक बार जो सुनाना शुरू किया तो आश्रम के फाटक तक सुनाते चले गए।

किसी-किसी वक्त गांधी जी, बीच में, हँसते हुए कुछ कहते। वे बहुत धीमी आवाज़ में बोलते थे, लगता अपने आपसे बातें कर रहे हैं, अपने साथ ही विचार विनिमय कर रहे हैं। उन दिनों को स्वयं भी याद करने लगे हैं।

शीघ्र ही वे सब आश्रम के अंदर जा रहे थे।

मैं सेवाग्राम में लगभग तीन सप्ताह तक रहा। अकसर ही प्रातः उस टोली के साथ हो लेता। शाम को प्रार्थना सभा में जा पहुँचता, जहाँ सभी आश्रमवासी तथा कस्तूरबा एक ओर को पालथी मारे और दोनों हाथ गोद में रखे बैठी होतीं और बिलकुल मेरी माँ जैसी लगतीं।

उन दिनों एक जापानी 'भिक्षु' अपने चीवर वस्त्रों में गांधी जी के आश्रम की प्रदक्षिणा करता। लगभग मीलभर के घेरे में, बार-बार अपना 'गाँग' बजाता हुआ आगे बढ़ता जाता। गाँग की आवाज़ हमें दिन में अनेक बार, कभी एक ओर से तो कभी दूसरी ओर से सुनाई देती रहती। उसकी प्रदक्षिणा प्रार्थना के वक्त समाप्त होती, जब वह प्रार्थना-स्थल पर पहुँचकर बड़े आदरभाव से गांधी जी को प्रणाम करता और एक ओर को बैठ जाता।

उन्हीं दिनों सेवाग्राम में अनेक जाने-माने देशभक्त देखने को मिले। पृथ्वीसिंह आज़ाद आए हुए थे, जिनके मुँह से वह सारा किस्सा सुनने को मिला कि कैसे उन्होंने हथकड़ियों समेत, भागती रेलगाड़ी में से छलाँग लगाई और निकल भागने में सफल हुए और फिर गुमनाम रहकर बरसों तक एक जगह अध्यापन कार्य करते रहे। उन्हीं दिनों वहाँ पर मीरा बेन थीं, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खान आए हुए थे, कुछ दिन के लिए राजेंद्र बाबू भी आए थे। उनके रहते यह नहीं लगता था कि सेवाग्राम दूर पार का कस्बा हो।

एक दिन दोपहर के समय मैं आश्रम के बाहर निरुद्देश्य-सा टहल रहा था जब सड़क के किनारे एक खोखे के पीछे से अजीब-सी आवाज़ सुनाई दी–

"मैं मर रहा हूँ, बापू को बुलाओ। मैं मर जाऊँगा, बापू को बुलाओ।"

मैंने उस ओर कदम बढ़ा दिए। खोखे के अंदर पंद्रहेक साल का एक लड़का, जो देखने में गाँव का रहने वाला जान पड़ता था, पड़ा हाथ-पैर पटक रहा था और हाँफता हुआ बार-बार कहे जा रहा था–

"मैं मर जाऊँगा, बापू को बुलाओ।"

दो-एक आदमी उसके पास आकर खड़े हो गए थे। उनमें से एक आश्रमवासी जान पड़ता था।

"अरे कुछ बताओ तो, तुम्हें क्या हुआ है। वैद्य को बुलाएँ?"

"बापू-बापू को बुलाओ," लड़का बार-बार दोहराए जा रहा था।

"बापू नहीं आ सकते। ज़रूरी मीटिंग चल रही है।"

पर लड़का बराबर चिल्लाए जा रहा था और हाथ-पाँव पटक रहा था।
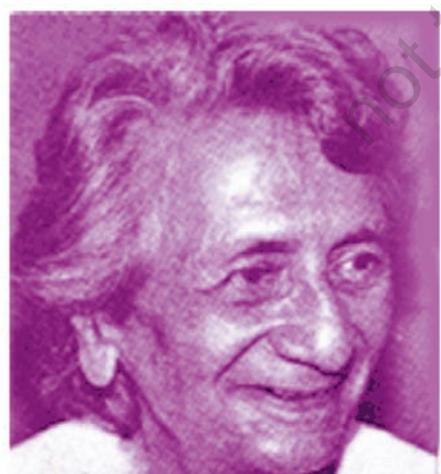
इतने में मैंने आँख उठाकर देखा तो गांधी जी चले आ रहे थे। दोपहर का वक्त था और वह अपने नंगे बदन पर खादी की हलकी सी चादर ओढ़े मैदान लाँघ रहे थे।

"आ गए बापू। आ रहे हैं", आश्रमवासी ने कहा। जिस पर लड़का ऊँचा-ऊँचा चिल्लाने लगा।

"बापू, मैं मर रहा हूँ। मैं मर जाऊँगा" और दाएँ-बाएँ सिर झुलाने लगा।

गांधी जी उसके पास आकर खड़े हो गए। उसके फूले हुए पेट की ओर उनकी नज़र गई, उस पर हाथ फेरा और बोले-

"ईख पीता रहा है? इतनी ज़्यादा पी गया? तू तो पागल है!"

कुछ देर तक तो गांधी जी उसके फूले हुए पेट पर हाथ फेरते रहे, फिर उसे सहारा देकर उठाते हुए बोले-

"इधर नीचे उतरो और मुँह में उँगली डालकर कै कर दो। चलो।"

और कहते हुए हँस पड़े-

"तू तो पागल है।"

लड़का हाय-हाय करता हुआ नीचे उतरा और नाली के किनारे बैठ गया। गांधी जी उसकी पीठ पर हाथ रखे झुके रहे।

थोड़ी ही देर में उसका पेट हलका हो गया और वह हाँफता हुआ बैठ गया।

"अब इधर खोखे में आकर लेट जा। कुछ देर चुपचाप लेटा रह।"

कुछ देर तक गांधी जी उसके पास खड़े रहे, फिर आश्रमवासी को कोई हिदायत सी देकर मुड़ गए और हँसते हुए "तू तो पागल है,' कहकर मैदान पार करने लगे।

गांधी जी के चेहरे पर लेशमात्र भी क्षोभ का भाव नहीं था। वे हँसते हुए चले गए थे।

हर दिन प्रातः जिस कच्ची सड़क पर वे घूमने निकलते उसके एक सिरे पर एक कुटिया थी, जिसमें एक रुग्ण व्यक्ति रहते थे, संभवतः वह दिक् के मरीज़ थे। गांधी जी हर दिन उसके पास जाते और उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ करते। उनका वार्तालाप गुजराती भाषा में हुआ करता। मैं समझता हूँ गांधी जी की देखरेख में उसका इलाज चल रहा था। यह गांधी जी का रोज़ का नियम था।

यह भी लगभग उसी समय की बात रही होगी। पंडित नेहरू काश्मीर यात्रा पर आए थे जहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ था। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में, झेलम नदी पर, शहर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक, सातवें पुल से अमीराकदल तक, नावों में उनकी शोभायात्रा देखने को मिली थी जब नदी के दोनों ओर हज़ारों-हज़ार काश्मीर निवासी अदम्य उत्साह के साथ उनका स्वागत कर रहे थे। अद्‌भुत दृश्य था।

इस अवसर पर नेहरू जी को जिस बँगले में ठहराया गया था, वह मेरे फुफेरे भाई का था और भाई के आग्रह पर कि मैं पंडित जी की देखभाल में उनका हाथ बटाऊँ, मैं भी उस बँगले में पहुँच गया था।

दिनभर तो पंडितजी स्थानीय नेताओं के साथ जगह-जगह घूमते, विचार-विमर्श करते, बड़े व्यस्त रहते पर शाम को जब बँगले में खाने पर बैठते तो और लोगों के साथ मैं भी जा बैठता। उनका वार्तालाप सुनता, नेहरू जी को नज़दीक से देख पाने का मेरे लिए यह सुनहरा मौका था।

उस रोज़ खाने की मेज़ पर बड़े लब्धप्रतिष्ठ लोग बैठे थे–शेख अब्दुल्ला, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खान, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, उनके पति आदि। बातों-बातों में कहीं धर्म की चर्चा चली तो रामेश्वरी नेहरू और जवाहरलाल जी के बीच बहस-सी छिड़ गई। एक बार तो जवाहरलाल बड़ी गरमजोशी के साथ तनिक तुनककर बोले, "मैं भी धर्म के बारे में कुछ जानता हूँ।" रामेश्वरी चुप रहीं। शीघ्र ही जवाहरलाल ठंडे पड़ गए और धीरे से बोले, आप लोगों को एक किस्सा सुनाता हूँ।"

और उन्होंने फ्रांस के विख्यात लेखक, अनातोले फ्रांस द्वारा लिखित एक मार्मिक कहानी कह सुनाई।

कहानी इस तरह है कि पेरिस शहर में एक गरीब बाज़ीगर (नट) रहा करता था जो तरह-तरह के करतब दिखाकर अपना पेट पालता था और इसी व्यवसाय में उसकी जवानी निकल गई थी और अब बड़ी उम्र का हो चला था।

क्रिसमस का पर्व था। पेरिस के बड़े गिरजे में पेरिस-निवासी, सजे-धजे, हाथों में फूलों के गुच्छे और तरह-तरह के उपहार लिए, माता मरियम को श्रद्धांजलि अर्पित करने गिरजे में जा रहे थे।

गिरजे के बाहर गरीब बाज़ीगर हताश सा खड़ा है क्योंकि वह इस पर्व में भाग नहीं ले सकता। न तो उसके पास माता मरियम के चरणों में रखने के लिए कोई तोहफ़ा है और न ही उस फटेहाल को कोई गिरजे के अंदर जाने देगा–

सहसा ही उसके मन में यह विचार कौंध गया–मैं उपहार तो नहीं दे सकता, पर मैं माता मरियम को अपने करतब दिखाकर उनकी अभ्यर्थना कर सकता हूँ। यही कुछ है जो मैं भेंट कर सकता हूँ।
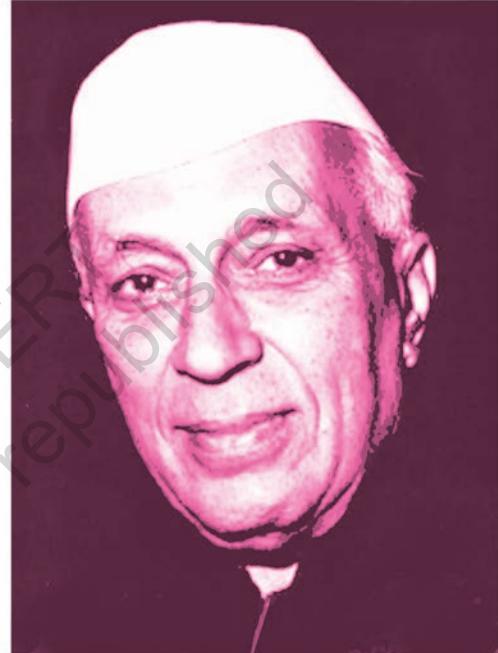
जब श्रद्धालु चले जाते हैं और गिरजा खाली हो जाता है तो बाज़ीगर चुपके से अंदर घुस जाता है, कपड़े उतारकर पूरे उत्साह के साथ अपने करतब दिखाने लगता है। गिरजे में अँधेरा है, श्रद्धालु जा चुके हैं, दरवाज़े बंद हैं। कभी सिर के बल खड़े होकर, कभी तरह-तरह अंगचालन करते हुए बड़ी तन्मयता के साथ एक के बाद एक करतब दिखाता है यहाँ तक कि हाँफने लगता है।

उसके हाँफने की आवाज़ कहीं बड़े पादरी के कान में पड़ जाती और वह यह समझकर कि कोई जानवर गिरजे के अंदर घुस आया है और गिरजे को दूषित कर रहा है, भागता हुआ गिरजे के अंदर आता है।

उस वक्त बाज़ीगर, सिर के बल खड़ा अपना सबसे चहेता करतब बड़ी तन्मयता से दिखा रहा था। यह दृश्य देखते ही बड़ा पादरी तिलमिला उठता है। माता मरियम का इससे बड़ा अपमान क्या होगा? आगबबूला, वह नट की ओर बढ़ता है कि उसे लात जमाकर गिरजे के बाहर निकाल दे।

वह नट की ओर गुस्से से बढ़ ही रहा है तो क्या देखता है कि माता मरियम की मूर्ति अपनी जगह से हिली है, माता मरियम अपने मंच पर से उतर आई हैं और धीरे-धीरे आगे बढ़ती हुई नट के पास जा पहुँची हैं और अपने आँचल से हाँफते नट के माथे का पसीना पोंछती उसके सिर को सहलाने लगी हैं।...

यह कहानी नेहरूजी के मुँह से सुनी। मेज़ पर बैठे सभी व्यक्ति दत्तचित होकर सुन रहे थे।

नेहरू जी का कमरा ऊपरवाली मंजिल पर था, जिसके बगलवाले कमरे में मैं और मेरे फुफेरे भाई टिके हुए थे। उस रात देर तक नेहरू जी चिट्ठियाँ लिखवाते रहे थे। सुबह सवेरे जब मैं उठकर नीचे जा रहा था तो नेहरू जी के कमरे के सामने से गुज़रते हुए मैंने देखा कि नेहरू जी फर्श पर बैठे चरखा कात रहे हैं। उनकी पीठ दरवाज़े की ओर थी।

मैं चुपचाप नीचे उतर आया। नीचे आकर देखा कि बरामदे में तिपाई पर अखबार रखा था। मैंने अखबार उठा लिया और बरामदे में खड़ा नज़रसानी करने लगा।

मैं अभी अखबार देख ही रहा था कि सीढ़ियों पर किसी के उतरने की आवाज़ आई। मैं समझ गया कि नेहरू जी उतर रहे हैं। उन्हें उस रोज़ अपने साथियों के साथ पहलगाम के लिए रवाना हो जाना था।

अखबार मेरे हाथ में था। तभी मुझे एक बचकाना-सी हरकत सूझी। मैंने फैसला किया कि मैं अखबार पढ़ता रहूँगा और तभी नेहरू जी के हाथ में दूँगा जब वह माँगेंगे। कम-से-कम छोटा सा वार्तालाप तो इस बहाने हो जाएगा।

नेहरू आए। मेरे हाथ में अखबार देखकर चुपचाप एक ओर को खड़े रहे। वह शायद इस इंतज़ार में खड़े रहे कि मैं स्वयं अखबार उनके हाथ में दे दूँगा। मैं अखबार की नज़रसानी क्या करता, मेरी तो टाँगे लरज़ने लगी थीं, डर रहा था कि नेहरू जी बिगड़ न उठें। फिर भी अखबार को थामे रहा।

कुछ देर बाद नेहरू जी धीरे-से बोले–
"आपने देख लिया हो तो क्या मैं एक नज़र देख सकता हूँ?"
सुनते ही मैं पानी-पानी हो गया और अखबार उनके हाथ में दे दिया।

उन दिनों मैं अफ्रो-एशियाई लेखक संघ में कार्यकारी महामंत्री के पद पर सक्रिय था।

ट्यूनीसिया की राजधानी ट्यूनिस में अफ्रो-एशियाई लेखक संघ का सम्मेलन होने जा रहा था। भारत से जानेवाले प्रतिनिधि मंडल में सर्वश्री कमलेश्वर, जोगिंदरपाल, बालू राव, अब्दुल बिस्मिल्लाह आदि थे। कार्यकारी महामंत्री के नाते मैं अपनी पत्नी के साथ कुछ दिन पहले पहुँच गया था। ट्यूनिस में ही उन दिनों लेखक संघ की पत्रिका 'लोटस' का संपादकीय कार्यालय हुआ करता था। एकाध वर्ष पहले ही पत्रिका के प्रधान संपादक फैज़ अहमद फैज़ चल बसे थे।

ट्यूनिस में ही उन दिनों फ़िलिस्तीनी अस्थायी सरकार का सदरमुकाम हुआ करता था। उस समय तक फ़िलिस्तीन का मसला हल नहीं हुआ था और ट्यूनिस में ही, यास्सेर अराफ़ात के नेतृत्व में यह अस्थायी सरकार काम कर रही थी। लेखक संघ की गतिविधि में भी फ़िलिस्तीनी लेखकों, बुद्धिजीवियों तथा अस्थायी सरकार का बड़ा योगदान था।

एक दिन प्रातः 'लोटस' के तत्कालीन संपादक मेरे पास होटल में आए और कहा कि मुझे और मेरी पत्नी को उस दिन सदरमुकाम में आमंत्रित किया गया है। उन्होंने कार्यक्रम का ब्यौरा नहीं दिया, केवल यह कहकर चले गए कि मैं बारह बजे तुम्हें लेने आऊँगा।

वहाँ पहुँचे तो बड़ी झेंप हुई। हमारे पहुँचने पर यास्सेर अराफ़ात अपने दो-एक साथियों के साथ बाहर आए और हमें अंदर लिवा ले गए।

संभव है संपादक महोदय ने सुरक्षा की दृष्टि से हमें खोलकर न बताया हो कि वास्तव में हम दोनों को दिन के भोजन पर आमंत्रित किया गया था।

अंदर पहुँचे तो सदरमुकाम के लगभग बीसेक अधिकारी तथा कुछेक फ़िलिस्तीनी लेखक तपाक से मिले। कुछेक से मैं पहले मिल चुका था।

हम बड़े कमरे में दाखिल हुए। दाईं ओर को लंबी सी खाने की मेज़ पहले से लगी थी। उस पर पहले से ही एक बड़ा सा भुना हुआ बकरा रखा था जो लगभग आधे मेज़ को घेरे हुए था। मैं और मेरी पत्नी कमरे के बाईं ओर बैठाए गए, जहाँ चाय-पान का प्रबंध था। यास्सेर अराफ़ात हमारे साथ बैठ गए।

धीरे-धीरे बातों का सिलसिला शुरू हुआ। हमारा वार्तालाप ज़्यादा दूर तक तो जा नहीं सकता था। फ़िलिस्तीन के प्रति साम्राज्यवादी शक्तियों के अन्यायपूर्ण रवैए की हमारे देश के नेताओं द्वारा की गई भर्त्सना, फ़िलिस्तीन आंदोलन के प्रति विशाल स्तर पर हमारे देशवासियों की सहानुभूति और समर्थन

आदि। दो-एक बार जब मैंने गांधी जी और हमारे देश के अन्य नेताओं का ज़िक्र किया तो अराफ़ात बोले-

"वे आपके ही नहीं, हमारे भी नेता हैं। उतने ही आदरणीय जितने आपके लिए।"

बीच-बीच में आतिथ्य भी चल रहा था। अराफ़ात हमें फल छील-छीलकर खिला रहे थे। हमारे लिए शहद की चाय बना रहे थे। साथ-ही-साथ इधर-उधर की बातें भी चल रही थीं-अराफ़ात की इंजीनियरिंग की शिक्षा के बारे में, उनकी अनथक हवाई यात्राओं के बारे में, शहद की उपयोगिता के बारे में। शीघ्र ही हम बड़े इत्मीनान से उनके साथ बतिया रहे थे।

जब भोजन का समय आया तो मैं अपनी जगह पर से उठा और यह अनुमान लगाकर कि गुसलखाना कमरे के पार गलियारे में होगा, मैं सीधा कमरा लाँघ गया। मेरा अनुमान ठीक निकला। गुसलखाना वहीं पर था।

पर मेरी झेंप का अंत नहीं था जब मैं गुसलखाने में से बाहर निकला तो यास्सेर अराफ़ात तौलिया हाथ में लिए बाहर खड़े थे।

-आज के अतीत का अंश

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक सेवाग्राम कब और क्यों गया था?
2. लेखक का गांधी जी के साथ चलने का पहला अनुभव किस प्रकार का रहा?
3. लेखक ने सेवाग्राम में किन-किन लोगों के आने का ज़िक्र किया है?
4. रोगी बालक के प्रति गांधी जी का व्यवहार किस प्रकार का था?
5. काश्मीर के लोगों ने नेहरू जी का स्वागत किस प्रकार किया?
6. अखबार वाली घटना से नेहरू जी के व्यक्तित्व की कौन सी विशेषता स्पष्ट होती है?
7. फ़िलिस्तीन के प्रति भारत का रवैया बहुत सहानुभूतिपूर्ण एवं समर्थन भरा क्यों था?
8. अराफ़ात के आतिथ्य प्रेम से संबंधित किन्हीं दो घटनाओं का वर्णन कीजिए।
9. अराफ़ात ने ऐसा क्यों बोला कि 'वे आपके ही नहीं हमारे भी नेता हैं। उतने ही आदरणीय जितने आपके लिए।' इस कथन के आधार पर गांधी जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

भाषा-शिल्प

1. पाठ से क्रिया विशेषण छाँटिए और उनका अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

2. 'मैं सेवाग्राम में ·············· माँ जैसी लगती' गद्यांश में क्रिया पर ध्यान दीजिए।
3. नेहरू जी द्वारा सुनाई गई कहानी को अपने शब्दों में लिखिए।

योग्यता-विस्तार

1. भीष्म साहनी की अन्य रचनाएँ 'तमस' तथा 'मेरा भाई बलराज' पढ़िए।
2. गांधी तथा नेहरू जी से संबंधित अन्य संस्मरण भी पढ़िए और उन पर टिप्पणी लिखिए।
3. यास्सेर अराफ़ात के आतिथ्य से क्या प्रेरणा मिलती है और अपने अतिथि का सत्कार आप किस प्रकार करना चाहेंगे।

शब्दार्थ और टिप्पणी

गाँडा – बाजू और गले में पहना जाने वाला ताबीज़ या काला धागा
प्रदक्षिणा – परिक्रमा
घुप्प – गहरा, घोर
झिंझोड़कर – पकड़कर ज़ोर से हिलाना
पालथी – बैठने का एक आसन जिसमें दाहिने और बाएँ पैरों के पंजे क्रम से बाईं और दाईं जाँघ के नीचे दबे रहते हैं।
चीवर – वस्त्र, पहनावा, बौद्ध भिक्षुओं का ऊपरी पहनावा
क्षोभ – रोषयुक्त, असंतोष
रुग्ण – बीमार, अस्वस्थ
दिक् – तपेदिक
लब्ध प्रतिष्ठ – प्रसिद्धि प्राप्त, यश अर्जित करना
अभ्यर्थना – प्रार्थना, निवेदन
दत्तचित – जिसका मन किसी कार्य में अच्छी तरह लगा हो, एकाग्र
लरजना – काँपना, हिलना-डुलना
नज़रसानी – पुनर्विचार, पुनरीक्षण, नज़र डालना
सदरमुकाम – राजधानी
आँखों में चमक आना – प्रसन्न होना
हाथ पैर पटकना – बेचैन होना, तड़पना
पेट पालना – गुज़ारा करना
पानी-पानी होना – शर्मिंदा होना
आँखें गाड़ना – एक जगह नज़र टिकाना
पुलक उठना – प्रसन्न हो जाना
घेर लेना – अपनी ओर कर लेना
तिलमिला उठना – कष्ट या पीड़ा से विकल हो जाना
एक नज़र देखना – अवलोकन करना, ध्यान से देखना
चल बसना – दिवंगत होना